[2018] 2 एस.सी. आर. 814

मेस्सेर्स एडवांटा इंडिया लिमिटेड

विरुद्ध

बी एन शिवन्ना

(सिविल अपील संख्या 11113/2016)

फ़रवरी 21,2018

ए.के. सीकरी और अशोक भूषण, न्यायाधीशगण

अधिवक्ता अधिनियम 1961-8. 48एए बार काउंसिल ऑफ इंडिया (बीसीआई) - पुर्नविलोकन की शक्ति- का प्रयोग- राज्य बार काउंसिल के साथ अधिवक्ता द्वारा व्यवसायिक कदाचार के गंभीर कृत्यों के आरोप के लिए अपीलार्थी द्वारा शिकायत - अनुशासन समिति ने प्रत्यर्थी को कदाचार का दोषी पाया- बार काउंसिल द्वारा आदेश जिसके तहत प्रत्यर्थी को जीवन भर के लिए प्रैक्टिस से हटा दिया गया और उसका नाम बार काउंसिल के रोल से हटा दिया गया- प्रत्यर्थी द्वारा बीसीआई के समक्ष अपील - अनुशासनात्मक समिति निष्कर्ष से सहमत हुई ,हालाँकि सज़ा कम कर दी गई - प्रत्यर्थी को 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ 18 माह के लिए प्रतिबंधित कर दिया गया। प्रत्यर्थी द्वारा पुर्विलोकन याचिका- बार काउंसिल द्वारा मामले पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश देते हुए अनुमति दी गई - अपील में, माना गया जब बीसीआई के पुनर्विलोकन शक्ति में तथ्य की जांच की जाती है, तो तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, गुण-दोष के आधार पर इस तथ्य पर फिर से विचार करना कि प्रत्यर्थी को पीडब्लू-1 से प्रतिपरीक्षण करने के लिए उचित अवसर नहीं दिए गए, स्पष्ट रूप से

पुनर्विलोकन क्षेत्राधिकार से परे है। - अनुशासन समिति/बीसीआई की पुनर्विलोकन शक्ति को धारा 114 और आ. XLVII r 1 CPC-अन्य में निर्धारित संकीर्ण मापदंडों तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए- साथ ही, शक्ति को उस सीमा तक भी नहीं बढ़ाया जा सकता है कि पुनर्विलोकन करने वाला प्राधिकारी अपने पहले पारित आदेश पर अपीलीय प्राधिकारी बन जाए - बीसीआई ने अपने ही तथ्यों की जांच कर उसका पुनर्विलोकन किया और उसी तथ्य पर उसे पलट दिया जो पहले प्रस्तुत किये गये थे और उन्हीं तर्कों के आधार पर जो पहले दिए गए थे - बीसीआई ने अपनी पुनर्विलोकन शक्ति का प्रयोग करने की आड़ में, प्रत्यर्थी को अपनी गलती का फायदा उठाने की अनुमति देकर अनुचित दया दिखाई - पक्षकार अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकते- इससे भी अधिक, प्रत्यर्थी ने बेइर्मानी में लिप्त होकर एक प्रतिष्ठित व्यवसाय की प्रतिष्ठाा को कलंकित किया है- इस प्रकार, बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित आदेश को निरस्त कर दिया गया है और उसके पहले के आदेश को पुनर्जीवित किया।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने माना:

1.1 बीसीआई ने राय बनाई कि पीडब्लू-1 से प्रतिपरीक्षण के अवसर के आभाव से प्रत्यर्थी को अपना बचाव करने के महत्वपूर्ण अधिकार से वंचित कर दिया गया, जिससे निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ। उसी समय पर, उक्त आधार पर पुनर्विलोकन याचिका की अनुमति देते हुए, मामले को राज्य बार काउंसिल की अनुशासनात्मक समिति को वापस भेजने के बजाय, बीसीआई ने इस आधार पर मामला वापस ले लिया है कि अधिनियम की धारा 36 बी के आधार पर, एक वर्ष की अवधि समाप्त होने पर राज्य बार काउंसिल की अनुशासन समिति का अधिकार क्षेत्र समाप्त हो जाता है। इसमें आदेश दिया कि आगे की जांच बीसीआई की अनुशासन समिति द्वारा 19 जून, 2005 के स्तर से की

जाएगी और बीसीआई के अध्यक्ष इस संबंध में बीसीआई की अनुशासन समिति का गठन कर सकता है।

1.2 अपीलार्थी ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर पुनर्विलोकन याचिका की पोषणीयता पर प्रारम्भिक प्रश्न उठाया था कि पुनर्विलोकन के क्षेत्राधिकार की परिधि बहुत सीमित थी। इस आपत्ति को बीसीआई ने इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया है कि अधिनियम के अधीन बार काउंसिल की अनुशासनात्मक समिति का पुनर्विलोकन का क्षेत्राधिकार धारा 114 सीपीसी सहपठित नियम 1, आदेश XLVII सीपीसी के अधीन न्यायालय के पुनर्विलोकन क्षेत्राधिकार से अधिक व्यापक है।

1.3 आक्षेपित आदेश में यह पाया कि यदि कुछ स्पष्ट गलत किया गया है तो गलत को ठीक करने में कभी देर नहीं होती, अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 44 और धारा 48एए के आलोक में यह तथ्य स्थापित हुये कि, अनुशासनात्मक समिति की पुनर्विलोकन शक्तियों में वे तथ्य अनुपस्थित होते हैं जो सिविल न्यायालय की पुनर्विलोकन की शक्ति में निहित है। बीसीआई द्वारा किये गये उपरोक्त कथन के संबंध में कुछ संदेह विद्यमान नही है यद्यपि, वर्तमान मामले में तथ्यों पर इसका स्पष्ट रूप से अनुपालन निरंतर नहीं है उक्त विचार अनुसार बीसीआई, वास्तव में, पुनर्विलोकन शक्तियों के परिसीमा से बहुत आगे चली गयी है, भले ही इन्हें उदारतापूर्वक बनाया गया।

1.4 प्रत्यर्थी को पीडब्लू-1 का प्रतिपरीक्षण ना करने देने का उक्त आधार पहली बार पुनर्विलोकन याचिका में नहीं लिया गया था। स्टेट बार काउंसिल की अनुशासन समिति के समक्ष भी यह दलील दी गई थी। स्टेट बार काउंसिल ने तर्क पर विचार किया और इसे खारिज कर दिया क्योंकि यह पाया गया कि प्रत्यर्थी ने जानबूझकर विलंब की मंशा अपनाई थी। यह विनिर्दिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी को पर्याप्त अवसर देने के बाद शिकायतकर्ता का प्रतिपरीक्षण समाप्त किया गया। यद्यपि, प्रत्येक बार, जब मामला

पीडब्लू-1 की प्रतिपरीक्षण के लिए नियत किया जाता था, तो प्रत्यर्थी प्रॉक्सी वकील को एक मेडिकल प्रमाण पत्र के साथ भेजता था जिसमें यह लिखा होता था कि वह स्वतः उपस्थित होने में असमर्थ है। स्टेट बार काउंसिल ने मेडिकल प्रमाणपत्रों में विसंगतियां और अंतर्निहित विरोधाभास भी पाया।

1.5 प्रत्यर्थी ने बीसीआई के समक्ष संस्थित अपील में भी इस तथ्य को उठाया था। इस पर विचार करने के बाद, दोनों पक्षों के तर्कों और अभिलेख पर आये तथ्य के परिपेक्ष में, बीसीआई ने 10 सितंबर, 2011 के अपने आदेश में इस तर्क को बिना गुण दोष पर विचार किये विनिर्दिष्ट रूप से खारिज कर दिया,और स्टेट बार काउंसिल द्वारा किए गए निष्कर्षों की भी पुष्टि की जिसमें बार काउंसिल ने कहा कि प्रत्यर्थी ने अपीलीय प्राधिकारी की हैसियत से मामले का पुनर्विलोकन करते हुये व्यावसायिक कदाचार किया है।

1.6 विवाद्यक यह है कि क्या पीडब्लू-1 की प्रतिपरीक्षण को समाप्त करने में प्राकृतिक न्याय या निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों का खंडन किया गया था या क्या प्रत्यर्थी को पर्याप्त अवसर देने के बाद राज्य बार काउंसिल की ओर से की गयी यह कार्रवाई सही थी, बीसीआई द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से यह निराकृत किया गया और प्रत्यर्थी की अपील निराकृत करते समय अधिकारिता पूर्ण खारिज कर दी गयी। और इस स्पष्ट और निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रत्यर्थी को शिकायतकर्ता से प्रतिपरीक्षण करने के लिए पर्याप्त अवसर दिए गए थे और प्रत्यर्थी की यह त्रुटि थी कि वह उक्त अवसरों का लाभ उठाने में असफल रहा क्योंकि उसने किसी न किसी कारण से कार्यवाही में विलंब कारित किया। बीसीआई ने यह स्पष्ट किया कि यह पाया गया कि प्रत्यर्थी की गलती थी और उसका आचरण असहभागिता वाला था और वह मिथ्या कारणों से सुनवाई में भाग लेने से बच रहा था।

1.7 जब बीसीआई की पुनर्विलोकन शक्ति का परीक्षण करने पर यह पाया कि ऐसी स्थिति में इस प्रश्न पर गुण-दोष पर पुनर्विलोकन करना कि पीडब्लू-1 को प्रतिपरीक्षण का पूर्ण

अवसर नहीं मिला यह स्पष्ट रूप से पुनर्विलोकन के क्षेत्राधिकार से परे है इस न्यायालय के विचार भी ओ.एन.मोहिन्द्रू मामले के समान हैं इसमें कोई संदेह विद्यमान नहीं है, अनुशासनात्मक समिति/बीसीआई की पुनर्विलोकन शक्ति को धारा 114 और आदेश 47 नियम 1, सीपीसी में निर्धारित संकीर्ण मापदंडों के आधीन सीमित नहीं किया जा सकता साथ ही, शक्ति को उस सीमा तक भी नहीं विस्तारित जा सकता है कि पुनर्विलोकन करने वाला प्राधिकारी अपने पूर्व पारित आदेश का अपीलीय प्राधिकारी बन जाए। इससे बी.सी.आई. को दी गयी स्वतत्रता बार काउंसिल को दिए गए व्यापक आयाम और विवेकाधिकार से भी आगे बढ़ जायेगी। उन्होंने अपने समक्ष पूर्व में पेश किये गये तथ्यों का ही पुनर्विलोकन किया है और पूर्व में किये गये तर्कों व तथ्यों को समान रूप से परिवर्तित कर दिया। अभिलेख देखने के उपरांत यह दर्शित होता है कि, बीसीआई ने अपनी पुनर्विलोकन शक्ति का उपयोग करते हुये प्रत्यर्थी को उसकी त्रुटि व गलती का लाभ उसे लेने के अनुमति देकर अनुचित अनुग्रह दर्शित किया है इस केस में *नुलस कमोडम केपेरे पोटेस्ट डी इंजुरिया सुआ प्रोप्रिया* का अर्थ बताया है कि कोई भी पक्षकार अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकता।

यूरेका फोर्ब्स लिमिटेड बनाम इलाहाबाद बैंक और अन्य।

(2010)6एससीसी193: [2010]5एससीआर990-संदर्भित।

1.8 प्रत्यर्थी द्वारा किये गये गंभीर कदाचार के मामले में प्रत्यर्थी ने बेईमानी व कपट में संलिप्त होकर एक प्रसिद्घ व्यवसाय की प्रतिष्ठाा को कलंकित किया उसने यह अपीलार्थी को यह दिखाकर प्रवंचित किया कि अपीलार्थी के विरूद्घ विभिन्न आपराधिक मामले दर्ज किए गए थे और जिसमें अपीलार्थी की गिरफ्तारी की आशंका निहित थी। मामलों की इस मनगढ़ंत कहानी के आधार पर, प्रत्यर्थी ने अवैध तरीके को अपनाकर अपीलार्थी से भारी मात्रा में धन वसूल किया। इस प्रक्रिया में प्रत्यर्थी ने प्रकरणों में समानता दिखाने के लिए, प्रत्यर्थी ने कई दस्तावेज़ गढ़े जिससे वह प्रकरण अन्य प्रकरण के समान ही लगे। अंततः, यह पाया गया कि अपीलार्थी के खिलाफ किसानों द्वारा ऐसा कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया

गया था। प्रत्यर्थी को दाण्डिक कार्यवाही में निचली न्यायालय ने दोषी ठहराया और यह पाया कि उसने उच्च न्यायालय के आदेश की फर्जी प्रति भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, जिसके लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय ने उसके विरूद्घ अवमानना की कार्यवाही प्रारम्भ की और अवमानना याचिकाओं में आदेश दिनांक 18 अगस्त, 2004 में उसे दोषी पाया गया और उच्च न्यायालय ने 6 महीने के साधारण कारावास के साथ-साथ 2000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गयी।

1.9 बी.सी.आई की अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 11जुलाई 2015 को अपास्त किया गया अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 11जुलाई 2015 को अपास्त करते हुये बीसीआई द्वारा पारित आदेश10 सितंबर, 2011 को पुनःसक्रिय किया यद्यपि, उक्त आदेश प्रत्यर्थी को दी गई सज़ा को उस सीमा तक कम कर सकता है, यह सिविल अपील क्रमांक 273/2012 की विषय वस्तु है जो निर्णय के अधीन होगा, यदि उसे उपयुक्त पीठ द्वारा पूर्णरूप में लाया जाता है और उस पर गुण-दोष पर सुनवाई करने का निर्णय लिया जाता है तो वह अपील के गुण-दोष के आधार पर निर्णीत होगा|

ओ.एन.मोहिन्द्रू बनाम जिला न्यायाधीश, दिल्ली एवं अन्य (1971)

3 एससीसी 5: [1971] 2 एससीआर 11 - संदर्भित।

संदर्भित क़ानूनी केस

[1971] 2 एससीआर 11 पैरा 13 को संदर्भित करता है

[2010] 5 एससीआर 990 पैरा 20 को संदर्भित करता है

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 11113/2016

विरुद्ध निर्णय और आदेश दिनांक 11.07.2015 जोकि बार काउंसिल ऑफ इंडिया की अनुशासनात्मक समिति के द्वारा पुनर्विलोकन याचिका संख्या 7/2011 इन डी.सी. अपील संख्या 59 में 2005 में पारित किया गया|

बी.के. संपत कुमार, बालाजी श्रीनिवासन, सुश्री वैष्णवी सुब्रमण्यम, सुश्री प्रतीक्षा मिश्रा, अभिषेक भारती, अल्जो के. जोसेफ, सयूज मोहनदास एम., विशाल अरुण, अधिवक्तागण उपस्थित पक्षों के लिए.

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया|

<u>ए.के. सीकरी, न्यायाधीश</u> 1. विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न इस अपील में निर्धारित किया जाना है कि जो बार काउंसिल ऑफ इंडिया (बीसीआई) की अनुशासनात्मक समिति के पुनर्विलोकन की शक्ति से संबंधित है। अपीलार्थी ने कर्नाटक राज्य बार काउंसिल में प्रत्यर्थी जो एक वकील है के विरूद्घ इस आशय की शिकायत पेश की कि,प्रत्यर्थी ने गंभीर व्यवसायिक कदाचार किया है और शिकायत को अनुशासनात्मक समिति को भेजा गया था। इसने दोनों पक्षों को अपने-अपने साक्ष्य पेश करने का उचित अवसर देने के बाद मामले की जांच की और प्रत्यर्थी को उसके खिलाफ लगाए गए कदाचार के आरोपों का दोषी ठहराया। 31 जुलाई, 2005 को राज्य बार काउंसिल द्वारा आदेश पारित किया गया था, जिससे प्रत्यर्थी को जीवन भर प्रैक्टिस करने से रोक दिया गया और उसका नाम बार काउंसिल के रोल से भी हटा दिया गया|

2. प्रत्यर्थी द्वारा बीसीआई के समक्ष संवैधानिक अपील की गई थी जिसमें आदेश दिनांक10 सितंबर, 2011 के तहत उक्त अपील का निराकरण किया गया। इसमें प्रत्यर्थी को दी गई सज़ा को कम करते हुए उसे 18 महीने की अवधि के लिए प्रतिबंधित कर दिया, साथ ही 25,000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया। प्रत्यर्थी ने बीसीआई द्वारा पारित 10 सितंबर, 2011 के आदेश की पुनर्विलोकन की वांछा करते हुए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा

48AA के तहत पुनर्विलोकन याचिका दायर की। बार काउंसिल ने 11 जुलाई 2015 के आदेश के आधीन पिछले आदेश को निरस्त करते हुए और मामले पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश देते हुए बार काउंसिल ने पुनर्विलोकन याचिका स्वीकार कर ली। उस पुनर्विलोकन याचिका में पारित आदेश इस न्यायालय की प्रक्रिया में आक्षेपित किया गया है।

3. उपरोक्त प्रारंभिक अभिमत के पश्चात मामले के तथ्य को विवरण इस प्रकार है किः

अपीलार्थी कंपनी की शिकायत के अनुसार, वह सूरजमुखी, मक्का, कपास, चावल, बाजरा और ज्वार जैसे बीजों और संकरों के अनुसंधान, उत्पादन और वितरण करता था। प्रत्यर्थी का अपीलार्थी कंपनी के साथ एक लंबा संबंध शुरुआत में 1998 में मार्केटिंग एक्जीक्यूटिव के रूप में उनके साथ रहा है हालाँकि, कुछ समय के बाद उसने वह व्यवसाय छोड़ दिया और फिर विधिक सलाहकार के रूप में वापस लौट आए। अपीलार्थी के अनुसार, इसी समय उसने अपीलार्थी कंपनी को लाखों रुपये की हेराफेरी करने की एक विस्तृत योजनी बनायी। यह सितंबर, 2000 में शुरू हुआ जब एक पुलिस कांस्टेबल कई बार अपीलार्थी के कार्यालय में आया और दावा किया कि वह अपीलार्थी कंपनी के प्रबंध निदेशक, सीएफओ और अन्य शीर्ष अधिकारियों के खिलाफ वारंट निष्पादित करने के लिए वहां आया । अपीलार्थी ने इस तथ्य के निराकरण लिए अपने विधिक सलाहकार, अर्थात प्रत्यर्थी को बुलाया। प्रत्यर्थी ने पुलिस कांस्टेबल के साथ लंबी बातचीत की, जिसके अंत में उसने अपीलार्थी को सूचित किया कि कई किसानों ने स्पष्ट रूप से कंपनी के खिलाफ शिकायतें दर्ज की थीं और पुलिस कांस्टेबल बड़ी संख्या में हुई शिकायतों के सन्दर्भ में आया था कॉन्स्टेबल हर बार एक ही प्रकार से आया था।

4. अपीलार्थी ने शिकायत में आगे आरोप लगाया कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी कंपनी को उनके खिलाफ दर्ज कथित शिकायतों को अभिखंडित करने के लिए 631 आपराधिक याचिकाएं दायर करने की सलाह दी। उसने अपीलार्थी कंपनी के मुख्य अधिकारियों की गिरफ्तारी की

आशंका घटित होने संबंधी एक फोटो पेश की थी और आगे तर्क दिया कि इस गंभीर स्थिति को केवल तभी रोका जा सकता था जब आपराधिक याचिकाएं दायर की जाएँ। उसने सुश्री गौरी का परिचय उस विक्रेता के रूप में कराया जिसके द्वारा न्यायालय शुल्क के लिए स्टाम्प खरीदे जाने थे प्रत्यर्थी ने कहा कि प्रत्येक याचिका को दायर करने के लिए 10,000/- रुपये (केवल दस हजार रुपये) के न्यायालय शुल्क की आवश्यकता होगी - प्रत्यर्थी द्वारा गुमराह किए जाने पर, अपीलार्थी ने आपराधिक याचिका दायर करने के लिए अदालत की फीस के लिए 62,51,259/- रुपये (बासठ लाख इक्यावन हजार दो सौ उनसठ रुपये मात्र) जमा कर दिए। अपने झूठ को विश्वसनीय बनाने के लिए, प्रत्यर्थी ने अदालत की फीस के रूप में प्राप्त राशि के लिए सुश्री गौरी द्वारा हस्ताक्षरित एक रसीद जारी की। इसके अलावा, प्रत्यर्थी ने यह भी कहा कि आपराधिक याचिकाओं से निपटने के लिए अन्य वकीलों की आवश्यकता पड़ेगी और अपीलार्थी कंपनी से तीन व्यक्तियों को बनाए रखने का आग्रह किया, जिनका परिचय उन्होंने सीसी नारायण, डी. रमेश और राघवेंद्र राव के रूप में कराया था। इसके बाद अपीलार्थी कंपनी ने इन तीन व्यक्तियों को 15 महीने की अवधि में 6,46,500/- रुपये (केवल छह लाख छियालीस हजार और पांच सौ रुपये) के चेक जारी किए। उपरोक्त रकम के अलावा, प्रत्यर्थी ने अपीलकर्ताओं से 2,12,500/- रुपये (दो लाख बारह हजार और पाँच सौ रुपये मात्र) का शुल्क उसकी खुद की फीस के रूप में लिया।

5. इस समय तक, अपीलार्थी कंपनी मुकदमेबाजी पर 72,00,000/- रुपये (बहत्तर लाख रुपये मात्र) खर्च कर चुके थे याचिकाओं के परिणामों के बारे में चिंतित थे। प्रत्यर्थी ने उन्हें आश्वासन दिया कि आपराधिक याचिकाएँ अच्छी तरह से आगे बढ़ रही हैं और दिसंबर 2001 में जब केवल आश्वासन ही पर्याप्त नहीं थे, उसने एक दस्तावेज़ पेश किया, उसने दावा किया कि वह उच्च न्यायालय कर्नाटक के बेंगलुरु बेंच के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 3 अक्टूबर 2001 है, जिसके द्वारा अपीलार्थी कंपनी के पक्ष में 318 याचिकाएँ स्वीकार की गईं। प्रत्यर्थी का आचरण उसके और अपीलार्थी कंपनी द्वारा

आदान-प्रदान किए गए कई अभिलेख से साबित होता है यह नाटक लगातार जारी रखा। यद्यपि, अपीलार्थी कंपनी को प्रत्यर्थी के टालमटोल के तरीके पर संदेह हुआ था। जनवरी, 2002 में, पुलिस कांस्टेबल ने अपीलार्थी के कार्यालयों के विरूद्घ और वारंट जारी करने की धमकी दी। तत्पश्चात, अपीलार्थी कंपनी ने एक अन्य अधिवक्ता की सलाह ली। अपीलार्थी कंपनी की इस कार्रवाई से प्रत्यर्थी द्वारा उनके साथ किए गए असंख्य धोखे प्रकाश में आए।

6. अपीलार्थी कंपनी ने अपने नवनियुक्त अधिवक्ता श्री बी.के. संपत कुमार को आपराधिक याचिकाओं की स्थिति की जांच करने का निर्देश दिया, जैसा कि उन्हें लगा कि ये मामले निचली न्यायालय के समक्ष लंबित हैं, इसलिए कांस्टेबल द्वारा उन्हें कॉल करने और वारंट जारी करने की धमकी देने का कोई कारण नहीं था। तब उन्हें पता चला कि उनके नाम पर कोई आपराधिक याचिका दायर नहीं की गई थी।अपीलार्थी कंपनी को यह भी जानकारी प्राप्त हुई कि दांडिक शिकायत दायर करने के लिए कोई न्यायालय शुल्क नहीं देना होता है। धोखे के तथ्य जब सामने आने लगे तब कर्नाटक के स्टाम्प आयुक्त और बैंगलोर एडवोकेट्स एसोसिएशन के सचिव से की गई पूछताछ से पता चला कि सुश्री गौरी स्टाम्प की पंजीकृत विक्रेता नहीं थीं, जैसा कि उन्हें विश्वास दिलाया गया था। इस तथ्य ने अपीलकर्ताओं को उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए आदेश को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। बाद में कथित आदेश को जालसाजीयुक्त और नकली घोषित किया और स्पष्ट रूप से कहा कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने कभी भी ऐसा आदेश जारी नहीं किया था। इस फर्जी आदेश को प्राप्त करने के मद्देनजर, उच्च न्यायालय ने स्वत: संज्ञान लेते हुए सीसीसी क्रमांक 7/2002 के तहत अवमानना कार्यवाही शुरू की।

7. उपरोक्त आरोपों पर अधिवक्ता अधिनियम की धारा 35 के तहत कर्नाटक राज्य बार काउंसिल के समक्ष शिकायत दर्ज करने के अलावा, अपीलार्थी कंपनी ने आपराधिक अवमानना मामला क्रमांक 12/2002 भी दायर किया है और आईपीसी की धारा 400, 417, 419, 420,

468, 471 और 474 के तहत सीसी नंबर 8178/200 दायर किया जो चतुर्थ अपर मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, बैंगलोर के समक्ष लंबित है। अपीलार्थी ने ओएस नं. 1575/2002 72,00,000/- रूपये की वसूली हेतु भी दाखिल किया है जोकि प्रत्यर्थी द्वारा झूठे बहानों पर लिए गए थे।

8. राज्य बार काउंसिल ने संकल्प संख्या 68 के माध्यम से शिकायत को अनुशासनात्मक समिति के समक्ष भेजा। मामले की जांच करने के बाद, अनुशासनात्मक समिति ने प्रत्यर्थी को कदाचार का दोषी ठहराया और 31 जुलाई, 2005 के आदेशों के तहत, प्रत्यर्थी को जीवन भर के लिए प्रतिबंधित कर दिया और उसका नाम बीसीआई के रोल से हटा दिया। प्रत्यर्थी ने डीसीई क्रमांक 14/2004 में पारित आदेश के विरुद्ध डीसी अपील क्रमांक 59/2005 को बीसीआई के समक्ष प्रस्तुत किया। बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति ने 10 सितंबर, 2011 को अपील को निराकृत किया और निर्णय में राज्य बार काउंसिल द्वारा दिये प्रत्येक निष्कर्ष की पुष्टि की यद्यपि, उसने प्रत्यर्थी को दी गई सजा को कम करने का फैसला किया और उसे केवल 18 महीने की सीमित अवधि के लिए प्रतिबंधित कर दिया।

9. बीसीआई के उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी कंपनी ने इस न्यायालय के समक्ष सिविल अपील क्रमांक 2732/2012 दायर किया। जब यह अपील लंबित थी, प्रत्यर्थी ने धारा 48एए के तहत बीसीआई के समक्ष डीसी अपील क्रमांक 59/2005 की पुनर्विलोकन याचिका क्रमांक 7/2011 दायर की। अनुशासनात्मक समिति ने अधिनियम की धारा 44 के तहत निहित शक्तियों के अनुसार इस पर विचार किया और 11 जुलाई, 2015 के आदेश के तहत मामले को वापस बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति को भेज दिया।

10. तत्पश्चात अपीलार्थी द्वारा संस्थित सिविल अपील क्रमांक 2732/12, में पारित आदेश दिनांक 01 सितंबर, 2016 में इस न्यायालय द्वारा निराकृत करते हुये उसे निम्नलिखित आदेश के साथ निष्फल होना बताया।

"अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री नरेश कौशिक का कहना है कि चूंकि इस अपील में आक्षेपित आदेश को उलट दिया गया है और मामला बार काउंसिल ऑफ इंडिया की अनुशासनात्मक समिति को वापस भेज दिया गया है, इसलिए यह अपील निरर्थक हो गई है और अपीलार्थी को विधि के अनुसार पृथक कार्यवाही में पुनर्विलोकन याचिका में पारित आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता देते हुए खारिज किया जा सकता है। तदनुसार, सिविल अपील को अपीलार्थी के अधिवक्ता की प्रार्थना की स्वतंत्रता के साथ निष्फल मानेते हुए खारिज किया गया।"

11. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, अपीलार्थी कंपनी द्वारा दायर वर्तमान अपील सुनवाई के लिए आई है जिसमें दोनों पक्षों के वकील को सुना गया है।

12. बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 07 जुलाई 2015 को अवलोकन पर, यह पाया कि बीसीआई ने अपने आदेश को पुनर्विलोकन इस कारण किया कि राज्य अनुशासन समिति के समक्ष, प्रत्यर्थी को पीडब्लू-1, अर्थात शिकायतकर्ता से प्रतिपरीक्षण करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया और शिकायतकर्ता कि साक्ष्य 19 जून 2005 को समाप्त कर दी गयी, भले ही प्रत्यर्थी अपनी बीमारी के कारण उस दिन उपस्थित नहीं हो सका परन्तु उसने इसके समर्थन में चिकित्सा प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था। शिकायतकर्ता की गवाही समाप्त करने के बाद 3 जुलाई 2005 को प्रत्यर्थी की गवाही के लिए मामला तय किया गया था। हालाँकि, उस दिन भी प्रत्यर्थी की तबीयत ठीक नहीं थी और उसने 02 जुलाई 2005 के मेडिकल प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित ज्ञापन के रूप में स्थगन की मांग की थी। इस आवेदन को राज्य बार काउंसिल की अनुशासनात्मक समिति ने अस्वीकार कर दिया था और प्रत्यर्थी की गवाही को बंद कर दिया गया। उस आधार पर, बीसीआई ने एक राय बनाई है कि पीडब्लू-1 से जिरह करने के अवसर के अभाव में, प्रत्यर्थी को खुद का बचाव करने के अपने मूल्यवान अधिकार से वंचित कर दिया गया, जिससे

निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ। साथ ही उपरोक्त आधार पर पुनर्विलोकन याचिका स्वीकार करते हुए। मामले को राज्य बार काउंसिल की अनुशासन समिति को वापस भेजने के बजाय, बीसीआई ने इस आधार पर मामले को अपने पास वापस ले लिया है कि अधिनियम की धारा 36 बी के आधार पर, एक वर्ष की अवधि समाप्त होने पर राज्य बार काउंसिल की अनुशासन समिति का अधिकार क्षेत्र समाप्त हो जाता है। उसमें आदेश दिया है कि आगे की जांच बी.सी.आई की अनुशासन समिति द्वारा 19 जून, 2005 के स्तर से की जाएगी और अध्यक्ष, बीसीआई इस संबंध में बीसीआई की अनुशासन समिति का गठन कर सकते हैं।

13. यह भी विचारणीय है कि अपीलार्थी ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर पुनर्विलोकन याचिका की पोषणीयता पर प्रारम्भिक प्रश्न उठाया था कि पुनर्विलोकन के क्षेत्राधिकार की परिधि बहुत सीमित थी। इस आपत्ति को बीसीआई ने इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया है कि अधिनियम के अधीन बार काउंसिल की अनुशासनात्मक समिति का पुनर्विलोकन का क्षेत्राधिकार धारा 114 सीपीसी सहपठित नियम 1, आदेश XLVII सीपीसी के अधीन न्यायालय के पुनर्विलोकन क्षेत्राधिकार से अधिक व्यापक है। इस उद्देश्य से इस न्यायालय ने **ओ.एन. मोहिन्द्रू बनाम जिला न्यायाधीश, दिल्ली**[1] **एवं अन्य के मामले** का आशय लिया और उक्त निर्णय का भाग है किः

> " पुनर्विलोकन की शक्तियां सीमित नहीं हैं इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के समान बहुत अधिक आगे तक नहीं बढाया गया। ऐसी शक्तियों का प्रयोग किसी अधिवक्ता के पक्ष या विपक्ष में किसी उपयुक्त मामले में किया जा सकता है भले ही मामला किसी स्तर पर या इसके माध्यम से भी अनुशासनात्मक समिति के हाथों में चला गया हो।

XXX XXXX XXXX

....न्यायालय की सभी प्रक्रियाओं का उद्देश्य न्याय सुरक्षित करना है और ऐसी ही एक प्रक्रिया है पुनर्विलोकन की शक्ति।

14. उपरोक्त आदेश के अधीन असंतुष्टता व्यक्त करते हुये उक्त आक्षेपित आदेश में यह पाया कि यदि कुछ स्पष्ट गलत किया गया है तो गलत को ठीक करने में कभी देर नहीं होती, अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 44 और धारा 48एए के आलोक में यह तथ्य स्थापित हुये कि, अनुशासनात्मक समिति की पुनर्विलोकन शक्तियों में वे तथ्य अनुपस्थित होते हैं जो सिविल न्यायालय की पुनर्विलोकन की शक्ति में निहित है।

15. बीसीआई द्वारा किये गये उपरोक्त कथन के संबंध में कुछ संदेह विद्यमान नही है यद्यपि, वर्तमान मामले में तथ्यों पर इसका स्पष्ट रूप से अनुपालन निरंतर नहीं है उक्त विचार अनुसार बीसीआई, वास्तव में, पुनर्विलोकन शक्तियों के परिसीमा से बहुत आगे चली गयी है, भले ही इन्हें उदारतापूर्वक बनाया गया। निष्कर्ष पर आने के लिये तथ्यों पर चर्चा की गयी।

16. प्रत्यर्थी को पीडब्लू-1 के प्रतिपरीक्षण ना करने देने का उक्त आधार पहली बार पुनर्विलोकन याचिका में नहीं लिया गया था। स्टेट बार काउंसिल की अनुशासन समिति के समक्ष भी यह दलील दी गई थी। स्टेट बार काउंसिल ने तर्क पर विचार किया और इसे खारिज कर दिया क्योंकि यह पाया गया कि प्रत्यर्थी ने जानबूझकर विलंब की मंशा अपनाई थी। यह विनिर्दिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी को पर्याप्त अवसर देने के बाद शिकायतकर्ता का प्रतिपरीक्षण समाप्त किया गया। यद्यपि, प्रत्येक बार, जब मामला पीडब्लू-1 की प्रतिपरीक्षण के लिए नियत किया जाता था, तो प्रत्यर्थी प्रॉक्सी वकील को एक मेडिकल प्रमाण पत्र के साथ भेजता था जिसमें यह लिखा होता था कि वह स्वतः उपस्थित होने में असमर्थ है। स्टेट बार काउंसिल ने मेडिकल प्रमाणपत्रों में विसंगतियां और अंतर्निहित

विरोधाभास भी पाया। इस संबंध में राज्य बार काउंसिल की अनुशासनात्मक समिति के अंतविष्ट आदेश में चर्चा निम्नानुसार है:

> ""अभिलेख से यह देखा जा सकता है कि समिति के समक्ष प्रत्यर्थी ने अपने प्रतिद्वंद्वी से प्रतिपरीक्षण करने के लिए अधिकतम छूट का उपयोग किया और अवसर का उपयोग करने के बावजूद उसने अपने प्रतिद्वंद्वी से प्रतिपरीक्षण पूरी करने का विकल्प नहीं चुना। समिति ने प्रत्यर्थी का आशय समझने के बाद अंततः प्रतिपरीक्षण को समाप्त करने का आदेश पारित किया। तत्पश्चात यह भी अवलोकनीय है कि पर्याप्त अवसर देने के बावजूद प्रत्यर्थी ने कुछ दस्तावेजों को प्रदर्श के रूप में चिह्नित करने के अलावा अपने बचाव को साबित करने के लिए अपनी ओर से कोई सबूत नहीं दिया, इससे उसे किसी भी तरह से बचाव में सहायता नहीं मिली या इस याचिका में शिकायतकर्ता द्वारा किए गए दावे का खंडन भी नहीं हो पाया । इस मामले में प्रत्यर्थी ने, कार्यवाही को रोकने के सभी प्रयास करने के सिवाय, उसके खिलाफ स्थापित मामले को ना साबित करने के लिए विधि के अधीन दिये सकारात्मक कदम नहीं उठाये।"

17. यह उल्लेख करने योग्य है कि प्रत्यर्थी ने बीसीआई के समक्ष संस्थित अपील में भी इस तथ्य को उठाया था। इस पर विचार करने के बाद, दोनों पक्षों के तर्कों और अभिलेख पर आये तथ्य के परिपेक्ष में, बीसीआई ने 10 सितंबर, 2011 के अपने आदेश में इस तर्क को बिना गुण दोष पर विचार किये विनिर्दिष्ट रूप से खारिज कर दिया,और राज्य द्वारा किए गए निष्कर्षों की पुष्टि की और बार काउंसिल ने कहा कि प्रत्यर्थी ने अपीलीय प्राधिकारी की हैसियत से मामले का पुनर्विलोकन करते हुये व्यावसायिक कदाचार किया है। बीसीआई के आदेश के सुसंगत भाग पर इस परिपेक्ष में चर्चा करते हुए, निम्नलिखित कहा गयाः

"अपीलार्थी ने आगे विरोध किया कि विद्वान लोअर डी.सी. ने उसे बचाव में साक्ष्य को रखने का पूरा अवसर नहीं दिया और विद्वान लोअर डी.सी. ने अपीलार्थी को समुचित अवसर दिए बिना जल्दबाजी और त्वरित तरीके से मामले का निर्णय किया। उक्त प्रक्रिया पर विचार करने के पश्चात वे इस तथ्य से संतुष्ट हैं कि अपीलार्थी को शिकायतकर्ता की प्रतिपरीक्षण के साथ-साथ उसके पक्ष में साक्ष्य देने के लिए पर्याप्त अवसर दिए गए थे। इस प्रक्रिया से और अपीलार्थी के आचरण से यह दर्शित होता है कि उसके द्वारा किसी न किसी कारण से प्रक्रिया में विलंब किया गया, इसलिए, विद्वान निचली अनुशासन समिति ने पूर्व में प्रतिपरीक्षण के अधिकार को समाप्त कर दिया और आगे पाया है कि पर्याप्त अवसर प्रदान करने के बावजूद अपीलार्थी अपने बचाव में अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा। इसके साथ ही, विद्वान लोअर डी.सी. ने भी निर्णय के पैराग्राफ 9 में इस विवाद्ययक को विस्तार से निराकृत किया और जिसमें कोई कमी नहीं थी। इस प्रकार, इस परिपेक्ष में अपीलार्थी द्वारा उठाई गई आपत्ति सारवान नहीं थी"

18. उपरोक्त अनुसार यह भी स्पष्ट है कि क्या पीडब्लू-1 के प्रतिपरीक्षण को समाप्त करने में प्राकृतिक न्याय या निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों का खंडन किया गया था या क्या प्रत्यर्थी को पर्याप्त अवसर देने के बाद राज्य बार काउंसिल की ओर से की गयी यह कार्रवाई सही थी, बी.सी.आई द्वारा इसका निराकरण किया गया और प्रत्यर्थी की अपील निराकृत करते समय अधिकारिता पूर्ण खारिज कर दी गयी और इस स्पष्ट और निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रत्यर्थी को शिकायतकर्ता से प्रतिपरीक्षण करने के लिए पर्याप्त अवसर दिए गए थे और प्रत्यर्थी की यह त्रुटि थी कि वह उक्त अवसरों का लाभ उठाने में असफल रहा क्योंकि उसने किसी न किसी कारण से कार्यवाही में विलंब कारित किया। बीसीआई ने यह स्पष्ट किया कि यह पाया गया कि प्रत्यर्थी की गलती थी और उसका आचरण असहभागिता वाला था और वह मिथ्या कारणों से सुनवाई में भाग लेने से बच रहा था।

19. जब उपरोक्त तथ्यात्मक विचार को ध्यान में रखते हुए बीसीआई की पुनर्विलोकन शक्ति का परीक्षण करने पर यह पाया कि ऐसी स्थिति में इस तथ्य पर गुण-दोष पर पुनर्विलोकन करना कि पीडब्लू-1 को प्रतिपरीक्षण का पूर्ण अवसर नहीं मिला यह स्पष्ट रूप से पुनर्विलोकन के क्षेत्राधिकार से परे है इस न्यायालय के विचार भी **ओ.एन.मोहिन्द्रू मामले** के समान हैं इसमें कोई संदेह विद्यमान नहीं है, अनुशासनात्मक समिति/बीसीआई की पुनर्विलोकन शक्ति को धारा 114 और आदेश 47 नियम 1, सीपीसी में निर्धारित संकीर्ण मापदंडों के भीतर सीमित नहीं किया जा सकता है। साथ ही, शक्ति को उस सीमा तक भी नहीं विस्तारित जा सकता है कि पुनर्विलोकन करने वाला प्राधिकारी अपने पूर्व पारित आदेश का अपीलीय प्राधिकारी बन जाए। जिससे बीसीआई को दी गयी स्वतत्रता बार काउंसिल को दिए गए व्यापक आयाम और विवेकाधिकार से भी आगे बढ़ जायेगी। उन्होंने अपने समक्ष पूर्व में पेश किये गये तथ्यों का ही पुनर्विलोकन किया है और पूर्व में किये गये तर्कों व तथ्यों को समान रूप से परिवर्तित कर दिया।

20. अभिलेख देखने के उपरांत यह दर्शित होता है कि, बीसीआई ने अपनी पुनर्विलोकन शक्ति का उपयोग करते हुये प्रत्यर्थी को उसकी त्रुटि व गलती का लाभ उसे लेने के लिए अनुमति देकर अनुचित अनुग्रह दर्शित किया है *नुलस कमोडम केपेरे पोटेस्ट डी इंजुरिया सुआ प्रोप्रिया* के केस में, इसका अर्थ बताया है कि कोई भी पक्षकार अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकता। इस कहावत को **यूरेका फोर्ब्स लिमिटेड बनाम इलाहाबाद बैंक और अन्य** [2] में निम्नलिखित तरीके से समझाया गया है:

> "सूक्ति *नुलस कमोडम केपेरे पोटेस्ट डी इंजुरिया सुआ प्रोप्रिया* में आज्ञात्मक स्पष्ट विधि है कि, एक व्यक्ति जो किसी प्रक्रिया में हेरफेर करके दूसरों के विधिक अधिकारों को विफल करता है, उसे अपने गलत या हेरफेर का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।"

21. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि प्रत्यर्थी पर कदाचार का एक गंभीर मामला है प्रत्यर्थी द्वारा किये गये गंभीर कदाचार के मामले में प्रत्यर्थी ने बेईमानी व कपट में संलिप्त होकर एक प्रसिद्घ व्यवसाय की प्रतिष्ठाा को कलंकित किया उसने यह अपीलार्थी को यह दिखाकर प्रवंचित किया कि अपीलार्थी के विरूद्घ विभिन्न आपराधिक मामले दर्ज किए गए थे और जिसमें अपीलार्थी की गिरफ्तारी की आशंका निहित थी। मामलों की इस मनगढ़ंत कहानी के आधार पर, प्रत्यर्थी ने अवैध तरीके को अपनाकर अपीलार्थी से भारी मात्रा में धन वसूल किया। इस प्रक्रिया में प्रत्यर्थी ने प्रकरणों में समानता दिखाने के लिए, प्रत्यर्थी ने कई दस्तावेज़ गढ़े जिससे वह प्रकरण अन्य प्रकरण के समान ही लगे। अंततः, यह पाया गया कि अपीलार्थी के खिलाफ किसानों द्वारा ऐसा कोई आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया गया था। प्रत्यर्थी को दाण्डिक कार्यवाही में निचली न्यायालय ने दोषी ठहराया और यह पाया कि उसने उच्च न्यायालय के आदेश की फर्जी प्रति भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, जिसके लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय ने उसके विरूद्घ अवमानना की कार्यवाही प्रारम्भ की और अवमानना याचिकाओं में आदेश दिनांक 18 अगस्त, 2004 में उसे दोषी पाया गया और उच्च न्यायालय ने 6 महीने के साधारण कारावास के साथ-साथ 2000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गयी।

22. चूंकि, प्रत्यर्थी की दोषसिद्धि के आदेश के विरूद्घ अपील अपीलीय न्यायालय के समक्ष लंबित होने से किसी प्रकार की टिप्पणी करने से प्रतिबंधित करता हैं और उक्त दृष्टिकोण से यह तथ्य सिविल अपील क्रमांक 273/2012 में निर्णय में सुसंगत होंगे।

23. उपरोक्त परिस्थितियों में, बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित दिनांक 11 जुलाई 2015 के आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है।

24. उपरोक्त चर्चा के परिणाम स्वरूप बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 10 सितंबर, 2011 को पुनःसक्रिय किया यद्यपि अपीलार्थी उक्त आदेश से

संतुष्ट नहीं था और उसने उक्त आदेश को चुनौती दी थी कि प्रत्यर्थी को दी गई सजा को संशोधित किया जाय। यद्यपि, उक्त अपील (सिविल अपील क्रमांक 273/2012) 01 सितंबर 2016 को निराकृत कर दिया गया क्योंकि पुनर्विलोकन याचिका में बीसीआई द्वारा 11 जुलाई 2015 को पारित आदेशों के कारण वह विफल हो गई थी। उपरोक्त परिस्थिति में पुनर्विलोकन याचिका में इस स्वतंत्रता के साथ यह आदेश पारित किया कि पुर्नविलोकन याचिका में दिये आदेश की आपत्ति विधि के अनुसार उठायी जा सकेगी उक्त परिस्थितियों में, अपीलार्थी को सिविल अपील क्रमांक 273/2012 में पारित आदेश दिनांक 01 सितंबर 2016 को वापस लेने और अपील को गुणदोष पर निराकरण करने के लिये पुनः नंबर पर लिये जाने की अनुमति दी गयी।

25. अंततः, बीसीआई की अनुशासनात्मक समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 11 जुलाई, 2015 को निरस्त करने के साथ, 10 सितंबर, 2011 का उनका पूर्व आदेश पुनर्जीवित किया गया।

यद्यपि, जिस सीमा तक उक्त आदेश प्रत्यर्थी को दी गई सज़ा को कम कर सकता है, वह सिविल अपील क्रमांक 273/2012 के निर्णय के अधीन होगा, यदि उसे उपयुक्त पीठ द्वारा पूर्णरूप में लाया जाता है और वह उस पर सुनवाई करने का निर्णय लिया जाता है तो वह अपील के गुण-दोष के आधार पर निर्णीत होगा| .

26. उपरोक्त शर्तों के तहत अपील स्वीकार की जाती है।

अपील बिना किसी व्यय के स्वीकार की गयी।

सुश्री सोनम शर्मा